इक तनहा सफ़र

युसूफ रईस

प्रज्ञा प्रकाशन
सांचोर

Ek Tanha Safar (Gazals)
by Yusuf Raees

ISBN No. : 978-81-930192-2-1
कॉपीराईट © युसूफ रईस

प्रकाशक :
प्रज्ञा प्रकाशन, सांचोर
ईमेल:- pragyaprakashan.schr@gmail.com
मोबाईल:- 08006623499

संस्करण : प्रथम, 2015

मूल्य : रुपये 100/-

शब्द संयोजन :
स्टूडेंट कम्प्यूटर्स
8, नन्दा बिल्डिंग, 19, सिविल लाईन
निकट आइ.आइ.टी. शताब्दी द्वार
रुड़की-247667
जनपद-हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

आवरण : साभार गूगल

मुद्रक : स्पीड ऑफसेट
क़ादरियान स्ट्रीट, खतौली
मुजफ्फरनगर-251201

उन तमाम जाने-अनजाने
लोगों की नज़्र
जिन्होंने मुझे
अपने होने का
अहसास कराया्
और संवारा

पाठकों को चिंतन की नई दिशा प्रदान करेगा यह संग्रह

बात संभवत: 1987-88 की है। कक्षा 6 में पढ़ने वाला एक बारह तेरह वर्ष का बालक अपनी अभ्यास-पुस्तिका लेकर मेरे पास आया और कहने लगा कि मुझे जितेन्द्र जी सर एवं फूलचंद जी सर ने आपके पास भेजा है। ये कहकर वह अभ्यास-पुस्तिका मुझे पकड़ा दी। उस बालक में जिज्ञासा, आग्रह और तेज था। मैंने वो डायरी देखी। कोई पन्द्रह बीस कविताएँ होंगी। उसकी कविताएँ बाल सुलभ भले ही थी मगर एक सोच तो थी उनमें। मैंने उस बालक से प्रश्न किया तुमने लिखी है? उसने स्वीकारोक्ति में सिर हिलाया। मुझे बालक में आत्म-विश्वास की झलक दिखाई दी तो उसकी कविताओं में अपार संभावना। मैंने पूछा ''कब से लिखते हो? यह प्रेरणा कहाँ से मिलती है?'' वो बोला ''सर ये तो पता नहीं, मगर मन में जो विचार आते हैं लिख लेता हूँ।'' यह बालक लय, तुक, मात्रा, छंद आदि के ज्ञान से परे था। मैं निर्णय कर चुका था कि इस बालक को परिष्कृत करना है और फिर प्रारम्भ हुआ गुरू-शिष्य का वह सम्बन्ध जो बाद में उससे भी बढ़कर प्रगाढ़ हो गया। मेरे उत्साहवर्धन के बाद उस बालक की लेखनी निरंतर चलने लगी। उस बालक का कद और मेरी उम्र लगातार बढ़ती रही। फिर यही बालक हिन्दी भाषा से उर्दू की तरफ बढ़ने लगा और अल्प समय में ही उर्दू साहित्य में भी अपना स्थान बनाने लगा। ये बालक यूसुफ़ रईस था।

यद्यपि इस बालक के परिवार में शिक्षा का कोई माहौल नहीं था; फिर भी इस नन्हे फूल की सुगंध नगर के बुद्धिजीवियों में फैलने लगी। उस छोटी सी उम्र में ही उसने खूब लिखा। इसी बीच समीप के कस्बे सोयत (म.प्र.) में अखिल भारतीय कवि सम्मेलन का आयोजन हुआ। जिसमें मैं भी श्रोता के तौर पर उपस्थित था। संयोग से यूसुफ़ मुझे वहाँ मिल गया जो शायद कवि सम्मेलन सुनने आया था। कवि सम्मेलन का संचालन देश के प्रसिद्ध कवि रमेश गुप्ता 'चातक' करने वाले थे। मैं यूसुफ को आयोजकों और रमेश गुप्ता जी के पास लेकर गया और उनसे आग्रह किया वो इसे काव्य पाठ का अवसर दें। मेरा आग्रह स्वीकार कर लिया गया। अल्प आयु में ही यूसुफ़ रईस ने अखिल भारतीय कवि-सम्मेलन के मंच पर न केवल सशक्त प्रस्तुति दी वरन् अलग छाप भी छोड़ी। वेश्या शीर्षक सुनकर ही मंचासीन कवि हतप्रभ रह गये। बालक ध्यान अर्जित करने साथ प्रशंसित हुआ। पारिवारिक असहयोग के बीच यूसुफ रईस उच्च शिक्षा के लिये जयपुर चला गया। परन्तु साहित्य साधना जारी रही। नये परिवेश में सृजनशीलता भी परिष्कृत हुई और कई मार्ग भी खुले। फिर भी दैनिक समाचार पत्रों, साहित्यिक पत्रिकाओं आदि में छपने का क्रम ही प्रारम्भ हो गया। यूसुफ रईस जब भी पिड़ावा आते मुझसे मिलते और साहित्य पर चर्चा करते। मैं उसे मार्गदर्शन की बजाय अब चर्चा ही कहूँगा, क्योंकि ये साहित्य जगत में अपना स्थान बना चुके थे। शिक्षा और साहित्य साधना में कई अवरोध पैदा हुए, आर्थिक अभावों के बावजूद स्वाभिमान से समझौता नहीं किया। शायद यही कारण रहा हो कि इन्होंने सरकारी नौकरी नहीं चुनी।

शिक्षा पूरी कर गाँव आने के बाद पारिवारिक दायित्वों का निर्वाह करने के लिये ट्यूशन का सहारा लिया। अल्फा कोचिंग के नाम से कोचिंग संस्थान प्रारम्भ किया, जिसने अल्प समय में ही प्रसिद्धि प्राप्त कर ली। परन्तु लिखने का क्रम भंग हो गया। लेखनी अवरूद्ध हो गई।

आजीविका के लिये उठा पटक और अपनों के दिये गये दंश से आहत होते हुए भी इसकी खुद्दारी ने स्वार्थ और अवसरवादिता के विरूद्ध आवाज मुखर की। अन्याय, अनीति, खुदगर्जी के खिलाफ

आवाज उठाने की इसी फितरत के चलते इनकी नेता और अधिकारी वर्ग से कभी नहीं बनी। स्वयं यूसुफ़ रईस के ही शब्दों में-

मैं अश्कों को बहाऊँ क्यों?
ख़ज़ाना ये लुटाऊँ क्यों?
भला नखरे उठाऊँ क्यों?
वो खुद रूठा मनाऊँ क्यों?
नहीं मेरा यक़ी जिसको
उसे दिल की सुनाऊँ क्यों?
अभी अहसास ज़िंदा हैं
मैं अपना सर झुकाऊँ क्यों?

यूसुफ़ रईस खुद्दार अवश्य है, परन्तु अहंकारी नहीं है। इनसे मिलकर कोई कल्पना भी नहीं कर सकता कि ये वो ही व्यक्ति है जो सशक्त रचनाकार निर्भिक पत्रकार, सफल अध्यापक, भावुक हृदय, विद्रोही नेता और संवेदनशील समाज सेवक है। लगभग पन्द्रह वर्ष के बाद साहित्य का ये नक्षत्र उर्दू की नई रोशनी लेकर साहित्याकाश पर फिर उदित हुआ है। मुझे अपने ज्येष्ठ पुत्र अनिल उपहार जो कि वर्तमान में साहित्य के क्षेत्र में काम कर रहे हैं और मंच के सफल संचालक एवम् गीतकार के तौर अपनी पहचान बनाने में सफल रहे हैं, के माध्यम से ज्ञात हुआ कि यूसुफ़ रईस फेसबुक पर सक्रिय हैं और उर्दू अदब में होनहार शायर के तौर पर सराहे जा रहे हैं। मुझे उम्मीद है कि यह होनहार, चमत्कृत सितारा उर्दू अदब में अहम स्थान प्राप्त करेगा। मुझे हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि श्री सुमित्रानन्दन पंत की यह पंक्तियाँ याद आ रही हैं-

वियोगी होगा पहला कवि, आह से होगा उपजा ज्ञान,
निकलकर आँखों से चुपचाप; बही होगी कविता अनजान

ये पंक्तियाँ युवा शायर यूसुफ़ रईस पर फिट बैठती है। शायर के भीतर की पीड़ा, तड़पन, उपेक्षा, खुद्दारी, खुद ब खुद शब्द बनकर पाठक को झकझोर देती है। प्रस्तुत संग्रह की एक एक रचना महकते फूल से कम नहीं है।

मुझे विश्वास है कि अदब के गुलदस्ते में यूसुफ़ रईस के ग़ज़ल संग्रह का यह पहला पुष्प अलग ही खुशबू बिखेरेगा और पाठकों को चिंतन की नई दिशा प्रदान करेगा। पाठकों की निरंतरता संग्रह का स्वयं आकलन करेगी।

इस युवा रचनाकार के उज्ज्वल भविष्य की मंगल कामना के साथ

- कमल चन्द जैन
से. नि. व्याख्याता,
पिडावा (राजस्थान)

युसूफ रईस को पढ़ते हुए हर बार एक अलग अहसास ने मुझे झकझोरा-फ़ानी जोधपुरी

मशहूर शाइर निदा फ़ाज़ली साहब अपनी किताब 'सफ़र में धूप तो होगी' की एक ग़ज़ल में कहते हैं-

'जो खो जाता है मिलकर ज़िंदगी में
ग़ज़ल है नाम उसका शायरी में'

शाइरी की सबसे महबूब सिन्फ़ है ग़ज़ल, जिसे तुर्रा-ए-इन्तियाज़ भी कहा जाता है, को लगभग हर ज़बान ने अपनाया और गले लगाया। ग़ज़ल महबूब से गुफ़्तगू करने का तरीक़ा है वो भी इशारों में, इसीलिए इसे इशारों का आर्ट भी कहा गया है।
सनातन धर्म की मुक़द्दस किताब गीता में लिखा है, ''परिवर्तन ही संसार का नियम है'' ये परिवर्तन, ये तब्दीलियाँ ग़ज़ल में भी आईं। इन तब्दीलियों ने ग़ज़ल की नोइय्यत (प्रकृति) को भी बदला। ग़ज़ल में अब ग़म-ए-जानां की जगह ग़म-ए-दुनिया अक्सरियत के साथ रक़म किया जाने लगा। मैं भी ग़ालिबन इसी मंज़िल का एक अदना सा मुसाफ़िर हूँ। सोशल नेटवर्किंग ने एक अलग दुनिया ईजाद की है, जिसमें दीवाने भी हैं, फ़लसफ़ी भी हैं और शाइर भी। सोशल नेटवर्किंग के उन्हीं रास्तों पे चलते हुए मैं मिला युसूफ़ रईस से जिनकी शायरी में कुछ ऐसी मक़नातिशी (चुम्बकीय) बात थी, जो हमेशा मुझे अपनी तरफ खींचती थी. इनकी शायरी से मुतासिर हुआ तो सिलसिला-ए-चैटिंग चला, जो फोन कॉल और मुलाक़ात तक भी आया।
बहरहाल युसूफ रईस को पढ़ते हुए हर बार एक अलग अहसास ने मुझे झकझोरा। उनका एक शेर है-

''इस नदी को यहाँ से उठा ले चलो
इसको सहरा की जानिब बहा ले चलो''

मैं अरूज और फन्नीहय्यित की बात नहीं करूँगा। उसका सबब ये है कि ख़ामियाँ तो हर जगह मौजूद हैं, मुकम्मल ज़ात सिवाय ज़ाते-इलाही के अलावा कोई नहीं।
ऐसा नहीं कि युसूफ हमेशा दुनिया की बातों को ही मर्कज़े-शाइरी बनाते हैं, उनकी शाइरी में कभी-कभी क्लासिक टच भी देखने को मिलता है। उनका एक शेर है-

''छुप गया कोई चाँद बादल में
ज़ुल्फ़ बिखरी जो खुल के शानों पर''

कभी-कभी युसूफ की ज़ाती ज़िंदगी भी बिना दक्कुल-दाब किये इनकी शायरी में चली आती है। दिन भर टायर की दुकान पे टायरों का क़ारोबार करते हुए बड़ी आसानी से युसूफ कह देते हैं-

''उम्र भर टेढ़ा चला हूँ
आदमी लेकिन भला हूँ''
अगर युसूफ तसव्वुर की बात करते हैं तो ज़ात में छिपी अय्यारी का भी हँसके ऐतराफ़ करते हैं।

युसूफ को क़लम पकड़े हुए अभी ज़ियादा अरसा नहीं हुआ, मगर ग़ज़ल पे उनकी पकड़ मजबूत होती जा रही है। शायरी में दिनों-दिन निखार पैदा होता जा रहा है। अब इंशाल्लाह ये निखार एक न एक दिन उन्हें सफ़े-अव्वल में खड़ा कर देगा।

युसूफ का मुनफ़रिद लबो-लहज़ा इन्हें दीगर शोअरा से अलग करता है और यह लहज़ा ही उनकी शिनाख़्त है और शाइरी में उनकी पहचान है। अगर वो अपने ज़हन को मुतालेआ की गिज़ा देते रहें तो मैं यह उम्मीद उनसे कर ही सकता हूँ कि वो अपने अश'आर में, फ़िक्र में पैनापन ज़रूर लायेंगे।

युसूफ रईस का यह पहला मज्मुआ-ए-ग़ज़ल है, मेरी नेक ख़्वाहिशात इनके साथ हैं। मैं दुआगो हूँ कि युसूफ को शायरी में उनकी मंज़िल मिले। मुझे इनके जिन अश'आर ने मुतास्सिर किया, आप भी मुलाहिजा करें-

''सर पे कोई जूनून तारी है
जंग ख़ुद से ही अपनी जारी है''

''आईना थाम के नहीं मुमकिन
एक पत्थर को देवता करना''

''वो ज़माने की नयी रफ़्तार में गुम हो गया
छत से उतरा और फिर दीवार में गुम हो गया''

''तुम भी कोई सूरज हो
जलते हो दिनभर बाबा''

- फ़ानी जोधपुरी
शायर/लेखक
जोधपुर (राज.)

खट्टे-मीठे तजुर्बों को लफ़्ज़ों का जामा पहनाता मज्मुआ 'इक तनहा सफ़र'

शायरी असरदार तब होती है, जब उसे लिखा या कहा नहीं, बल्कि जिया जाये। जब कोई शायर अपनी शायरी को जीने लगता है, तब दुनिया उसके लफ़्ज़ों का अहतराम करना शुरू कर देती है। जब भी कोई शख़्स तेज़ धूप में नंगे पाँव, बे-मंजिल डगर पर, बे-मक़सद, दुनिया-जहान से बेख़बर अपने सीने की पीर को गुनगुनाने निकल पड़ता है, तब समझदार लोग उसे शायर और उसकी पीर को शायरी का नाम देते हैं।

'इक तनहा सफ़र' में भी यही पीर शायरी की शक्ल में आपके सामने है। जब युसूफ रईस साहब की पीर पढ़ी, तो लगा कि ये तो अपने ही दिल की आवाज़ है और निकल पड़ा इस आवाज़ को पकड़ने। पन्ने पलटते पलटते एक ऐसे जंगल में खो गया जहाँ आप-पास कोई न था, सिवाय दर्द के। युसूफ साहब की ग़ज़लों में बे-इंतेहा दर्द, तन्हाई, अकेलापन है जो मजमुआ के उनवान 'इक तनहा सफ़र' की तसदीक करता है।

यूँ तो युसूफ साहब से मिले लम्बा अरसा नहीं हुआ लेकिन इनको जानने/समझने में ज़्यादा वक़्त की ज़रूरत महसूस भी नहीं हुई। एक सादा सा इंसान जो अपने खुदा पर यक़ीन और खुद की ज़ात पर भरोसा रखता है। लोगों के ग़म में रोता है, उनकी खुशियों में खुश हो लेता है। अपनी ही मस्ती में रहता है और अपनी ही सुनता है। ज़िंदगी से मिले खट्टे-मीठे तजुर्बों को लफ़्ज़ों का जामा पहनाकर सबको बाँट देता है। यह मजमुआ उन्हीं तजुर्बों का महकता हुआ गुलदस्ता है। अगर साहिर लुधियानवी साहब के शब्दों में कहूँ, तो-

दुनिया ने तजुर्बातो-हवादिस की शक्ल में
जो कुछ मुझे दिया है, लौटा रहा हूँ मैं

शेर कहने का सलीक़ा, असरदार तरीक़े से बात कहने की अदा, एक कलंदराना लहज़ा, सूफ़ियाना मिज़ाज ये कुछ ऐसी चीजें हैं जो युसूफ साहब को शायरों की भीड़ से अलग करती हैं। जहाँ ये एक तरफ प्यार, मोहब्बत, इंसानियत की बात करते हैं, तो दूसरी तरफ अपने वक़्त की स्याह हक़ीक़त को गाते हैं। अपने तखय्युल की हसीन दुनिया में ले जाकर ख़्वाब दिखाते हैं, तो कभी हाथ में सच का आईना पकड़ा देते हैं। इनके कलाम पढ़ते हुए हम ज़िंदगी के अलग-अलग पहलुओं से रूबरू होते हैं।

ये भी सच है कि युसूफ साहब अभी सुखन की दुनिया में बहुत नये हैं और इन्हें अभी बहुत सी कमियों पर ग़ौर करना है। लेकिन मुकम्मल कोई शय भी नहीं। शायरी की तकनीक पर काम करते हुए इन्होंने चंद महीनों में बहुत कुछ सीखा है और अभी तो पूरी उम्र है युसूफ साहब के सामने। हम दुआ करते हैं कि युसूफ भाई ता-उम्र सीखते रहें और अपने उम्दा अश'आरों पर हमें झूमने का मौक़ा देतें रहें.....आमीन!

- के.पी. 'अनमोल'
प्रधान संपादक
'हस्ताक्षर' वेब पत्रिका

अपनी बात

मेरी ज़िंदगी उस धागे के गोले की मानिंद रही, जिसका एक सिरा सुलझाने की कोशिश की तो दूसरा सिरा उलझ गया। मेरी पैदाईश एक ऐसे घर में हुई जो किसी भी लिहाज़ से अमीर नहीं था। मेरे वालिद मोहतरम जनाब नूर मोहम्मद साहब ने हालांकि मदरसे से तालिम हासिल की थी, मगर दीगर तालिम के बारे में उनकी कोई राय नहीं थी। ऐसे माहौल के बीच मेरी पूरी पढ़ाई सरकारी स्कूल से शुरू हुई। मैं क्या पढ़ता हूँ, कैसा पढ़ता हूँ, शायद इसका कभी घर में जिक्र भी नहीं हुआ। मैं अरबी की तालिम लेने के लिये मदरसे भी जाता रहा। दो भाईयों में मैं मंझला था; लिहाजा कभी कोई ख़ास तवज़्जो नहीं मिली या यूँ कहिये कि बचपन से ही मैं अपनी दुनिया में खोया रहा। शायद इसी का असर रहा कि मैंने बचपन में ही कलम को थाम लिया था। मुझे खुद को बराबर याद नहीं कि कब से लिख रहा हूँ। जब मैं छठी कक्षा में पढ़ता था, तब अंग्रेज़ी के उस्ताद जनाब जितेन्द्र कुमार जैन साहब ने देखा कि मेरा ध्यान कहीं और है और मैं कुछ लिख रहा हूँ, तो उन्होंने मेरी डायरी छीन ली और अपने पास रख ली। मैं बहुत डर गया था। लंच के दौरान उन्होंने मुझे हैड मास्टर साहब जनाब फूलचंद जी जैन के चैम्बर में बुलाया। फूलचंद जी जैन साहब हिन्दी के अध्यापक थे। उन्होंने मुझसे पूछा क्या लिख रहे थे? कहाँ से लिख रहे थे? मैंने जवाब दिया सर मैं नहीं जानता हूँ क्या है, बस मन में जो आता है, लिख देता हूँ।

उन्होंने मुझे अपना स्कूल बैग लाने के लिये कहा। जब मैं बैग लेकर आ गया तो उन्होंने मुझे सीनियर हिन्दी व्याख्याता जनाब कमलचंद जी जैन को मेरी डायरी देने के लिये कहा। उस वक्त में बहुत डरा हुआ था। मैं समझा शायद मुझे सज़ा बड़े स्कूल के बड़े सर देंगे। लेकिन मजबूरी थी, मैंने सीनियर स्कूल पहुँच कर डायरी उन्हें पकड़ा दी। फिर यहीं से शुरू हुआ मेरा लेखन का सफ़र, महज़ ग़्यारह या दस साल की उम्र से। जनाब कमलचंद जी जैन साहब ने मुझे बहुत कुछ सिखाया समझाया यहाँ तक कि ज़िंदगी को संवारा भी।

स्कूल की तालिम और लेखन साथ साथ चल रहा था। घर परिवार के लोग इस सबसे अंजान थे। मैं हर दर्जा प्रथम श्रेणी से पास करता रहा। हालांकि स्कूल में हमेशा दूसरे नम्बर ही रहा। वजह रही मेरे अजीज दोस्त राम प्रसाद। मैं चाहता था कि वो हमेशा मुझसे आगे रहे; लिहाजा मैं किसी एक विषय में तैयारी कुछ कमजोर रखता। ये सिलसिला तब तक चला, जब तक हम साथ पढ़ते रहे। मेरी रचनाओं का प्रथम पाठक और प्रशंसक भी वही रहा। इधर घर-परिवार में मैं हमेशा ख़ामोश और अपनी दुनिया में ही डूबा रहा। लेकिन इससे न मुझे परेशानी थी, न किसी को कोई तकलीफ। जनाब कमलचंद जी जैन साहब की रहनुमाई ने कई रास्ते खोले और दो तीन साल में ही मैं अपनी उम्र के लिहाज़ से काफी अच्छा लिखने लगा था। यही वजह रही कि लड़कपन में ही मेरी कवितायें और कहानियाँ बालहंस, चंपक और कई दूसरी बाल-पत्रिकाओं में छपने लगी। लेकिन एक पत्रिका में एक बार रचना प्रकाशित होने के बाद दोबारा कभी नहीं भेजी। और हाँ, जो भी काम शुरू किया, जुनून की हद तक ले गया। मेरे दोस्त रामप्रसाद जो कि एक निर्धन परिवार से थे, ने इसी दौरान मुझसे वादा किया कि वो किसी दिन मेरी किताब छपवायेंगे। उस वक़्त ये वादा कोई मायने नहीं रखता था; क्योंकि उसे जेब खर्च के भी बहुत कम रूपये मिल पाते थे। मैं लगातार लिखता रहा, छपता रहा। मगर खुद को सबसे छुपाये रखा। इसी बीच पता लगा कि मेरे दोस्त आबिद खाँन भी लिखते है। जिन्हें हम रईस कहा

करते थे। दोनों के बीच कविताओं और कहानियों पर चर्चा होने लगी। दोनों ने साथ लिखने का फ़ैसला किया युसुफ़ रईस के नाम से। हमने साथ मिलकर कई सपने देखे। अब हमारी कवितायें युसुफ रईस के नाम से छपने लगीं। ज़िंदगी अपनी रफ़्तार से बढ़ रही थी। रईस साहब से मिलने के दो साल बाद ही रामप्रसाद और मैंने दसवीं के इम्तिहान में ज़बरदस्त क़ामयाबी हासिल की। स्टेट लेवल पर दोनों को जगह मिली और जिले में हम तकरीबन पहले और दूसरे नम्बर पर रहे। साल 1993 के बाद रईस साहब, मेरा और रामप्रसाद तीनों के रास्ते अलग-अलग हो गये। इस कामयाबी के बाद ही मेरे वालिद-वालिदा और परिवार के लोग जान सके कि मैं क्या कर रहा हूँ। इससे पहले किसी को मुझसे कोई सरोकार भी न था। ये अलग बात थी कि इन चार-पाँच सालों में हमारी माली हालत बहुत बेहतर हो चुकी थी और अब हमारे परिवार की गिनती शहर के ठीक-ठाक लोगों में होने लगी थी। मगर यहीं से मैं बहुत ज्यादा उसूल पसंद और बाग़ी होने लगा। जब दुनिया के बीच आया तो इसे बहुत करीब से जाना। ये दुनिया मेरी दुनिया से बहुत अलग थी। मैं ये सब देखकर बहुत मायूस था। हमारे पड़ौस के पढ़े-लिखे तबके और कमलचंद जी सर की समझाइश के बाद मेरे वालिद ने मुझे आगे की तालीम के लिये जयपुर भेज दिया। एक साल ही बीता होगा कि घर से खर्च आना बंद हो गया। क्यों हुआ? मैं इसका जिक्र करना मुनासिब नहीं समझता। मैंने वहाँ ट्यूशन पढ़ाना शुरू कर दिया और बारहवीं कक्षा भी पहले दर्जे से पास की, हालांकि मैं पहले जैसा परिणाम हासिल नहीं कर सका। इसके बाद मैं फिर अपने घर आ गया, लेकिन अपने बाग़ी और जज़्बाती तेवरों की वजह से घर में नहीं रह सका। जनाब रईस भाई मंसूरी साहब (जो कि अब चित्तौढ़गढ़ राजस्थान में फिजिशियन है; जो पिड़ावा के ही हैं और जयपुर में पढ़ाई कर रहे थे) ने सलाह दी कि मैं जयपुर आ जाऊँ। मैं उनके साथ फिर जयपुर चला गया और कई महिनों तक उनके साथ ही रहा। ट्यूशन और एक स्कूल में पढ़ाकर अपना खर्च निकालता रहा। कवितायें और कहानियाँ पीछे छूटती जा रही थीं। एक दिन 'कॉलेजों में बढ़ती हिंसक घटनायें; जिम्मेदार कौन? शीर्षक से एक लेख लिखकर जयपुर से छपने वाले अखबार 'समाचार जगत' के ऑफिस में पहुँच गया। उस समय अखबार के संपादक अनिल जी लोढ़ा साहब थे (जो अभी राजस्थान के समाचार चैनल ए-वन टीवी के हैड हैं) ने मुझे अमृता जी गौढ़ के पास भेज दिया। इस तरह बीस साल की उम्र में ही अखबार के संपादकीय पेज पर छपने का मौका मिल गया। मेरे आर्टिकल, लेख, कवितायें, कहानियाँ हर दूसरे दिन छपने लगीं। इससे आमदनी भी होने लगी तो फिर खुद किराये पर कमरा ले लिया।

अब कॉलेज की पढ़ाई पीछे छूटने लगी और लेखन परवान चढ़ने लगा। फिर भी मैं अपना मकसद तलाश न सका। एक दिन अख़बार की कतरनें और अपनी डायरियाँ लेकर आकाशवाणी जयपुर के ऑफिस जा पहुँचा। तब वहाँ के हैड इकराम राजस्थानी साहब थे, जो एक बड़े शायर की हैसियत रखते हैं। उन्होंने मेरी डायरी देखी तो मुझे रिकार्डिंग इंचार्ज के पास भेज दिया। रिकार्डिंग इंचार्ज ने मेरा हुलिया देखकर मुझसे कहा कि मेरे जैसे कई आते है, फार्म भर दो और जाओ। मैं फार्म भरकर फिर इकराम साहब के पास चला गया और सारी बात बता दी। इकराम साहब ने इंचार्ज को बुलाकर डांटा और दूसरे ही दिन मुझे रिकार्डिंग के लिये बुला लिया। दस या पन्द्रह मिनट की रिकार्डिंग हुई और मुझे कुल ढ़ाई सौ रूपये का चैक दिया गया। मैं रिकार्डिंग से ज्यादा चैक देखकर खुश हुआ। उसकी वजह पैसों की तंगी थी। लेकिन ये सुनकर उदास भी हुआ कि चैक बैंक खाते में जमा होगा, जो मेरे पास नहीं था। मैंने इकराम साहब से इसरार किया कि वो मुझे नकद दे दें, चाहे सौ रूपये कम ही हो। बहरहाल चैक जमा नहीं हो सका और वो सनद के तौर पर आज भी मेरे पास मौजूद

है। इसी बीच मैंने आई.टी. का प्री एग्जाम पास कर लिया; लेकिन अफसोस, पैसों की तंगी की वजह से फीस जमा नहीं कर पाया। फिर एक दिन जयपुर से पिड़ावा लौटते वक्त ट्रैन में मेरा बैग चोरी हो गया और मेरी डायरियाँ और अखबार की कतरनें भी चली गई।

वक़्त अपनी रफ़्तार से दौड़ रहा था। मैंने इस बीच एम.ए. कर लिया, दो अलग-अलग विषयों में। सन् 2000 में फिर पिड़ावा आ गया। कई छोटे-बड़े काम किये और फिर पत्रकारिता से जुड़ गया। 2002 में शादी के बाद कोचिंग सेंटर शुरू कर दिया, जो ज़बरदस्त क़ामयाब रहा और ज़िंदगी की गाड़ी चलती रही। बीवी ने बहुत हाथ बंटाया और खुद भी सिलाई, कढ़ाई, बुनाई की कक्षायें चलाई, साथ ही सिलाई भी की। शादी के बाद मैंने लिखना छोड़ दिया। हाँ, पत्रकारिता चलती रही। सन् 2007 में गले में इंफेक्शन और ब्लड प्रेशर की तकलीफ के चलते कोचिंग बंद करनी पड़ी, तो टायर का खुद का बिजनैस शुरू कर दिया, जो अभी तक चल रहा है। इसी दौरान कई सामाजिक संस्थाओं से जुड़ गया। हर ग़लत बात और कमी के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने, सड़क पर लड़ने और हर अधिकारी के सामने हक़ के लिये खड़ा होने की आदत की वजह से राजनीति में भी दखल हो गया और ज़िला स्तर का पदाधिकारी बना दिया गया। बैलदार, मजदूर, बस कंडक्टर, आटो रिक्शा चालक, ट्यूटर, लेखक, समाज सेवक, पत्रकार, कवि, वक्ता, राजनीतिक कार्यकर्ता, बिजनैस मैन। ऊफ! न जाने कितने पड़ाव आये। सबको एक साथ समेटना बहुत मुश्किल है। क़लम रखने के बाद अचानक उर्दू शायरी शुरू करने का भी दिलचस्प वाक्या है। मैंने इसी साल जनवरी से फिर लिखना शुरू किया। लेकिन अब मेरी शैली और शब्द बदल चुके थे। अब हिन्दी की बजाय उर्दू शैली हावी हो चली थी, जबकि उर्दू न तो मेरी ज़बान है, न बोल-चाल में है। अब रचनायें लिखकर फेसबुक पर डालने लगा तो कई लोग जुड़ गये, जिनमें ज़्यादातर उर्दू अदब से ताअल्लुक रखते थे। इन सभी लोगों ने हौंसला अफज़ाई की। मगर एक शख़्स ऐसे भी मिले, जिन्होंने मुझ पर उर्दू अदब की तौहीन का इल्ज़ाम लगा दिया। वजह पूछी तो बताया कि मेरी रचनायें ग़ज़ल शैली में तो है लेकिन ग़ज़लें नहीं, क्योंकि बहर, वज़न और काफिया दोष पूर्ण है। बस फिर क्या था। एक धुन सवार हो गई कि अब तो ये सब सीखकर मुकम्मल ग़ज़ल कहनी है। हिन्दी लेखक के लिये ये सब इतना आसान तो नहीं था फिर भी कई दोस्तों का साथ मिला और पाँच महिने बाद ही नतीज़ा आपके सामने है। हाँ, मेरे शायर दोस्त आबिद खान कभी-कभार रईस आबिद नाम से लिखते रहते हैं, और मैं उनका नाम उधार लेकर हमेशा के लिये युसुफ रईस बन गया, तो रामप्रसाद जी इंजिनियरिंग करके एन.टी.पी.सी. कोरबा (छत्तीसगढ़) में बड़े अफसर बन गये। हॉ, मगर उन्होंने अपना वादा निभाया और इस ग़ज़ल संकलन को खुद मंज़रे-आम पर लाये।

रामप्रसाद जी और अभी तक के सफ़र में जिन-जिन लोगों का मुझे साथ व मदद मिली, उन सभी का तहे-दिल से शुक्रगुज़ार हूँ।

- युसूफ रईस
पिड़ावा (राजस्थान)

अनुक्रम

क्र.सं.		पेज संख्या
1.	दर्दो-फुरकत की छंट गई रातें	15
2.	वही सबका ठिकाना है	16
3.	मैं अश्कों को बहाऊँ क्यूँ	17
4.	क्या हकीकत है क्या समझते हैं	18
5.	राह में वो मुझको तनहा छोड़ कर	19
6.	कब मेरे साथ चलने वाले थे	20
7.	भले कोई तूफाँ बिगड़ के खड़ा है	2v
8.	जिनके शानों पे सर नहीं होते	22
9.	भला काहे का रोना है	23
10.	जब वो मेरी हयात से निकले	24
11.	इस नदी को यहाँ से उठा ले चलो	25
12.	ख़्वाब टांगे थे जो मचानों पर	26
13.	दुश्मनी मुझसे निभाता है कोई	27
14.	फैसले इम्तिहान पर ठहरे	28
15.	मैं इम्क़ाने-सज़ा को अपने रब पे छोड़ देता हूँ	29
16.	ग़म के पहलू में पला हूँ	30
17.	ज़िस्म के उस पार जो देखा नहीं	31
18.	जाने किस साँचे में ढलना चाहता है	32
19.	हिन्दू न मुसलमान समझ	33
20.	सर पे कोई जुनूँ सा तारी है	34
21.	मैं जिधर चल पड़ा रास्ता हो गया	35
22.	तलाशें क्या भला सूखी नदी में	36
23.	अब न सूरत ये दिखाई देगी	37
24.	मंज़िले तन्हा, रहगुज़र तनहा	38
25.	खुद में खुद को ही यूँ फ़ना करना	39
26.	मैं खड़ा हूँ जाने कब से बेसहारा धूप में	40

27.	आज जाने कौनसा धोखा हुआ है	41
28.	क्या बताऊँ मेरा क़ातिल कौन है	42
29.	मैंने जब ख़ुद में उतर कर देखा	43
30.	वो ज़माने की नई रफ़्तार में गुम हो गया	44
31.	हाले-दिल उनको सुनाया जाये	45
32.	हर तरफ इक ख़ामशी सी है तो है	46
33.	मौत का जिसको डर नहीं होता	47
34.	ढूंढ़ने से नहीं मिला अपना	48
35.	हमसफ़र है न तलबग़ार कोई	49
36.	ये भूख मेरे घर में तमाशा नहीं करती	50
37.	रास्ते अपने बदल के आ गये	51
38.	ज़िंदगी तू कमाल करती है	52
39.	जिस घड़ी टूट कर मैं बिखर जाऊँगा	53
40.	सहरा से अपने हिस्से की सब धूप छानकर	54
41.	आँखों के दरपन से दुख के अक्स भले ही झाँकेंगे	55
42.	हो जाये मुलाक़ात कहीं पर	56
43.	यूँ तेरा पता हमने पूछा भी नहीं है	57
44.	रात के मेरे सहारे जागे	58
45.	रात में लगता डर बाबा	59
46.	हरेक मंजर मुझे बेजुबां की तरह लगता है	60
47.	वक़्त के ही फेर में मैं उलझा हुआ हूँ	61
48.	घर की दरो-दीवार में बिखरा हुआ हूँ	62
49.	साथ मेरे यूं तो रहबर भी बहुत थे	63
50.	मेरे ज़ेहन-ख़्याल के पैक़र से निकल जा	64
51.	सूरज जब भी खोल कर सीना निकलता है	65
52.	गाँव की सरहद से हम आगे निकल आये	66
53.	वक्त की अजब मार है भैया	67
54.	मेरी पलकों के पैकर में कोई रोता रहता है	68
55.	वो नसीमे-निक़हत जब उनका पता देगी	69

56.	नज़र में आसमान रखता हूँ	70
57.	बस गवाही का सबब पूछेंगे	71
58.	जीने का वो हर मुमकीन बहाना छीन लेते हैं	72
59.	यूँ जो मुश्किल हमसफ़र नहीं होती	73
60.	थोड़े ग़म है कुछ खुशी है और क्या	74
61.	फ़ैसला कल पे न टाला जायेगा	75
62.	जो मिला उसको ग़नीमत समझा	76
63.	ख़त्म सारा सिलसिला हो जायेगा	77
64.	आईने सा टूट के बिखर जाने के लिये हूँ	78
65.	आ अज़ल तुझको संवार देता हूँ	79
66.	यां ख़बर में एक ही तो मुद्दआ है	80
67.	सूर्य की नियति में है खग्रास लिखा	81
68.	ज़िंदगी में कैसे कैसे मोड़ आये	82
69.	दिल ने जो भी सहा नहीं कहते	83
70.	लज़्ज़त-ए-इश्क़ छुपाऊं कैसे	84
71.	अभी अभी सूरज की कंदील बुझा कर	85
72.	जीने के कुछ मानी रख	86
73.	जो कभी अपनों से धोखा खा गया	87
74.	जुल्मत का दौर अब तो मिटाने के लिये आ	88
75.	अजब-ग़ज़ब है रिश्तों का ये ताना बाना बस्ती में	89
76.	अपनी यादों का सिलसिला ले जा	90
77.	देख कर मैं कितना रोया झील में	91
78.	यूँ सारी मुश्किलों को आसान कर लिया	92
79.	हादसे-दर-हादसे होते रहे	93
80.	पहरा साँस पर अपनी बिठाकर तुम चले आना	94
81.	दिल में यूं परवाज़ की कुछ ख़्वाहिशें बाक़ी रहीं	95

ग़ज़ल-

दर्दो-फुरकत की छंट गई रातें
लम्हा लम्हा सिमट गई रातें

जब कभी भी हुआ हूँ मैं तनहा
आके मुझसे लिपट गई रातें

दिल की बस्ती में कौन आया है
आँखों आँखों में कट गई रातें

जल उठे हैं चराग़ राहों में
दूर आँखों से हट गई रातें

चाँद जुगनू और टूटते तारे
कितने हिस्सों में बंट गई रातें

याद जो दिल को आ गई तेरी
आते आते पलट गई रातें

ग़ज़ल–

वही सबका ठिकाना है
जहाँ आख़िर में जाना है

भला रोने से क्या हासिल
फ़क़त दिल को जलाना है

अगर दस्तार है सर पे
तो ठोकर में ज़माना है

हमें लड़ना पड़ेगा अब
अगर ख़ुद को बचाना है

तअल्लुक में तकल्लुफ़ है
मगर रिश्ता निभाना है

समेटो जाल सब अपने
परिंदे गर उड़ाना है

मुसाफ़िर तो मुसफ़िर है
हमारा क्या ठिकाना है

ग़ज़ल-

मैं अश्कों को बहाऊँ क्यूँ
खज़ाना ये लुटाऊँ क्यूँ

भला नखरे उठाऊँ क्यूँ
वो खुद रूठा मनाऊँ क्यूँ

नहीं मेरा यकीं जिसको
उसे दिल की सुनाऊँ क्यूँ

अगर है तीरगी क़िस्मत
फ़क़त दिल को जलाऊँ क्यूँ

नहीं मेरी ख़ता कोई
निगाहें फिर चुराऊँ क्यूँ

अभी अहसास ज़िंदा हैं
मैं अपना सर झुकाऊँ क्यूँ

मुसाफिर हूँ घड़ी भर का
ये खेमा फिर लगाऊँ क्यूँ

समझ लेगा वो हाले-दिल
उसे यूसुफ़ बताऊँ क्यूँ

ग़ज़ल–

क्या हकीकत है क्या समझते हैं
लोग कितना बुरा समझते हैं

साथ तूफान ले के चलता हूँ
और वो बस हवा समझते है

देखिये दिल पे कितना है भारी
वो जिसे फैसला समझते हैं

ऐब उसके नज़र नहीं आते
लोग जिसको बड़ा समझते हैं

वो फ़क़त है तुम्हारा ही चेहरा
जिसको सब आईना समझते हैं

उसकी कुदरत दिखाई देती है
हम जहाँ भी ख़ला समझते हैं

ग़ज़ल

राह में वो मुझको तनहा छोड़ कर
चल दिया सब रिश्ते-नाते तोड़ कर

कोई सूरज फिर उफ़क में खो गया
एक परबत पे थकन को छोड़ कर

यूँ नहीं आसाँ है उसको भूलना
वो गया कुछ ऐसा रिश्ता जोड़ कर

ढलती शब ने चाँद से कह ही दिया
रख ले सिरहाने मुझे तू मोड़ कर

अक्स मेरा किरचे किरचे हो गया
मैं बहुत पछताया शीशा तोड़ कर

कश्तियाँ यूसुफ़ वो फिर लौटी नहीं
जो गई थी खुद किनारा छोड़ कर

ग़ज़ल-

कब मेरे साथ चलने वाले थे
तुम तो रस्ता बदलने वाले थे

हुकमराँ सब शहर के बन बैठे
जितने टुकड़ों पे पलने वाले थे

आईना क्यूँ ये तुमने तोड़ दिया
हम तो चहरा बदलने वाले थे

हो भला तेरी बेवफ़ाई का
हम कहाँ यूँ ही टलने वाले थे

अपनी भी ज़िद पे अड़ गया तूफाँ
राह कब हम बदलने वाले थे

वो तरफ़दार हवा के निकले
जो दिये साथ जलने वाले थे

ग़ज़ल–

भले कोई तूफाँ बिगड़ के खड़ा है
मगर इक दिया अपनी जिद पे अड़ा है

जो निकला था सूरज को सर पे उठाये
दरख़्तों के साये में तनहा खड़ा है

ये ढलती हुई शाम का ही असर है
जो साया मेरा मेरे क़द से बड़ा है

ख़्वाबों में उनके न कोई ख़लल हो
यूं रुसवा चिरागों को होना पड़ा है

न मंज़िल है कोई, न कोई ठिकाना
वो सर पे ज़मीं को उठाये खड़ा है

ग़ज़ल–

जिनके शानों पे सर नहीं होते
लोग वो मो'तबर नहीं होते

हम जो अहले-सफ़र नहीं होते
कश्तियों में भंवर नहीं होते

तीर सब बेअसर नहीं होते
माँ के साये में गर नहीं होते

इतने आसाँ सफ़र नहीं होते
दश्त में ये जो घर नहीं होते

शिक़वा कैसे करें चराग़ों से
रोशनी के तो पर नहीं होते

दश्त में हम भी यूँ ही खो जाते
साथ में तुम अगर नहीं होते

कौन कागज़ पे दिल को यूँ लिखता
हम भी शायर अगर नहीं होते

ग़ज़ल–

भला काहे का रोना है
वही होगा जो होना है

घड़ी भर का तमाशा ये
फिर गहरी नींद सोना है

वही छूटा है हाथों से
जो मिट्टी का खिलोना है

शिकायत हो किसी से क्यूँ
जो क़िस्मत में ही रोना है

हँसो बेसाख्ता तुम भी
अगर दामन भिगोना है

भला पतवार ही क्यूँ दी
जो साहिल पे डुबोना है

ये साँसें बोझ जैसी हैं
और जिस्मो-जाँ खिलोना है

ग़ज़ल–

जब वो मेरी हयात से निकले
यूँ लगा क़ायनात से निकले

बोलना चाहिये वही तुमको
कोई मतलब जो बात से निकले

तीरगी जिस्म जाँ में फैली है
रोशनी अब सलात से निकले

हादसे मेरी जाँ पे गुज़रे हैं
जबसे तुम मेरी जात से निकले

बन गई धूप हमसफ़र मेरी
ज़ुल्फ़ की जब कनात से निकले

जंगलों में भटक गये सारे
जो भी तेरी निजात से निकले

एक मुद्दत हुई चलो यूसुफ़
ज़िंदगी की रुबात से निकले

ग़ज़ल-

इस नदी को यहाँ से उठा ले चलो
इसको सहरा की जानिब बहा ले चलो

यां फजाओं में नफ़रत ही नफरत घुली
प्यार की साथ में कुछ हवा ले चलो

हम कहीं भीड़ में खो न जायें कहीं
जेब में रख के घर का पता ले चलो

इन निगाहों से चूता है अब भी लहू
लो किसी चारागर से दवा ले चलो

टांग दो खूंटियों पे ये झूठी हँसी
आँसुओं का नया सिलसिला ले चले

रात के घर में है तीरगी का चलन
तुम वहाँ रोशनी की शमा ले चलो

राह में आयेंगी लाख दुश्वारियां
साथ में माँ की यूसुफ दुआ ले चलो

ग़ज़ल–

ख़्वाब टांगे थे जो मचानों पर
उड़ गये आज आसमानों पर

छुप गया चाँद कोई बादल में
ज़ुल्फ़ बिखरी जो खुलके शानों पर

अब तो आँखों से मुझे पीना है
क़ुफ़्ल लग जाये बदा खानों पर

धूप में पंख वो जला बैठे
फ़ख़्र करते थे जो उड़ानों पर

हक़ पे इल्ज़ाम लग गये सारे
क़ुफ़्ल जब पड़ गये ज़ुबानों पर

रखना होंठों पे तिश्नगी यूसुफ़
इक नदी बहती है ढलानों पर

ग़ज़ल-

दुश्मनी मुझसे निभाता है कोई
जाते-जाते भी बुलाता है कोई

रेज़ा-रेज़ा हुए सभी सपने
आँख में इनको बसाता है कोई

रह के सीने में धड़कनों की तरह
रात भर मुझको जगाता है कोई

रात के पुरख़तर अँधेरे में
बज़्म उल्फ़त की सजाता है कोई

आरज़ू-ए-दिल से यूसुफ़ बाँधकर
ख़्वाब के जुगनू उड़ाता है कोई

ग़ज़ल–

फैसले इम्तिहान पर ठहरे
हम नदी के निशान पर ठहरे

जो मुसाफिर हो दिल की बस्ती का
रात भर किस मकान पर ठहर

उसको देखा तो लड़खडाये क़दम
लफ़्ज़ आकर ज़ुबान पर ठहरे

ज़िंदगी जिस जगह से फिसली थी
आज फिर उस ढलान पर ठहरे

उड़ चले दूर आसमानों में
हौंसले क्या थकान पर ठहरे

डूबे यूसुफ़ तो डूब जाने दो
नाव भी कब उफ़ान पर ठहरे

ग़ज़ल–

मैं इम्क़ाने-सज़ा को अपने रब पे छोड़ देता हूँ
मेरी माँ गर बुलाती है तो नीयत तोड़ देता हूँ

परिंदे आस ले के इसलिये आ जाते हैं छत पर
मैं अपने पेड़ से उनके मरासिम जोड़ देता हूँ

मुसलसल साथ में तन्हाईयाँ रहती तो हैं लेकिन
उन्हें हर शाम दरवाज़े पे अपने छोड़ देता हूँ

नहीं करता तकाज़ा गैर से खुशियों का मैं अपनी
अगरचे बात हो ग़म की तो महफ़िल छोड़ देता हूँ

मुझे तूफ़ान भी बेचैन होकर ढूंढते हैं तब
कभी जब अपनी कश्ती को किनारे छोड़ देता हूँ

नहीं धुलते हैं मंज़िल के निशाँ अब बारिशों में भी
मैं यूसुफ चलते-चलते रास्ते ही मोड़ देता हूँ

ग़ज़ल–

ग़म के पहलू में पला हूँ
आंसुओं का सिलसिला हूँ

उम्र भर टेढ़ा चला हूँ
आदमी लेकिन भला हूँ

रोया हूँ खुद से लिपट कर
जो कभी तन्हा मिला हूँ

रोशनी हासिल कहाँ है
रात भर कितना जला हूँ

वक्त भी थम सा गया है
मैं जिधर से भी चला हूँ

धूप को ढोया है दिन भर
शाम होते ही ढ़ला हूँ

शम्अ यादों की जलाये
आँधियों से जा मिला हूँ

ग़ज़ल-

ज़िस्म के उस पार जो देखा नहीं
ज़िंदगी क्या है कभी सोचा नहीं

मैं चला जाऊँगा लेकिन सोच लो
वक़्त वापस लौटकर आता नहीं

चल पड़ा हूँ मैं भी अपने आप में
और उसने भी मुझे रोका नहीं

मैं तुम्हारे लब से बोतल चूम के
हाँ नशे में हूँ मगर बहका नहीं

दिल तमन्ना क्यूँ करें उस ग़ैर की
जिसका चेहरा भी कभी देखा नहीं

मैं चला तो रास्ते भी चल पड़े
मंज़िलों का कुछ पता पूछा नहीं

आईना तुझको बनाया था कभी
अक्स मेरा आज तक लौटा नहीं

ये रफ़ाकत के भरम झूठे हैं सब
जो लगे अपना सा वो अपना नहीं

जिसको उड़ने का सलीक़ा आ गया
वो परिंदा फिर कभी लौटा नहीं

ग़ज़ल–

जाने किस साँचे में ढलना चाहता है
अपनी ही सूरत बदलना चाहता है

कुर्ब की चाहत में यूँ परवाने सा
फिर शमा के साथ जलना चाहता है

हौंसला पतवार का मौज़ों पे रख
फिर से तूफाँ सर उठाना चाहता है

जिसको लगता शहर ये अजनबी
वो मकां अपना बदलना चाहता है

ज़िस्म के औराक पर हैं बिखरे जो
वक़्त उन ज़ख़्मों को भरना चाहता है

अक्स तेरा हूँ मैं तू सूरत मेरी
आईना अब क्या दिखाना चाहता है

तीरगी है बादलों की ओट भी
क्यूँ ये सूरज फिर निकलना चाहता है

ग़ज़ल–

हिन्दू न मुसलमान समझ
मुझको बस इंसान समझ

हर सू गर हो सन्नाटा
पहलू में तूफान समझ

ग़म जो मेरे साथ में है
मेरी ही पहचान समझ

माँ की दुआ गर साथ में है
हर मुश्किल आसान समझ

मंज़िल मंज़िल चीख रही
राहों को सुनसान समझ

फिर जाहिद तलवार उठा
पर पहले ईमान समझ

वक्त कभी क्या ठहरा है
ये है बहुत बेईमान समझ

ग़ज़ल-

सर पे कोई जुनूँ सा तारी है
जंग खुद से ही अपनी जारी है

रेत सहरा की जिसको समझा था
उसके पैकर में चश्मा जारी है

नींद में जागते मेरे सपने
हाय कैसी ये बेकरारी है

हक़ अगर जो मिले कई सारे
साथ में इसके ज़िम्मेदारी है

मौत ने कब कहाँ किसे बख़्शा
आगे पीछे सभी की बारी है

लम्हा लम्हा चुका रहा हूँ मैं
साँस का अब भी फिल्ला जारी है

ज़िंदगी बोझ सी लगे मुझको
गरचे अब भी सफ़र ये जारी है

तेरी ख़ातिर जहाँ में ऐ यूसुफ़
उसने क्या ने'मतें उतारी है

ग़ज़ल–

मैं जिधर चल पड़ा रास्ता हो गया
देखते देखते काफ़िला हो गया

मैं ख़तावार हूँ और वो पारसा
एक लम्हे में ये फ़ैसला हो गया

हाथ से जिसको मैंने तराशा कभी
वो सुना है तुम्हारा ख़ुदा हो गया

क्या ख़ता हो गई सारे क्यूँ है ख़फ़ा
इश्क ही तो हुआ और क्या हो गया

तेरी यादों ने जबसे किनारा किया
दिल की बस्ती में कोई ख़ला हो गया

स्याह शब ले गई मोती चुन के सभी
वो गुहर तीरगी में फ़ना हो गया

जबसे नज़रें मिली धड़कनें तेज हैं
ये बताओ मुझे यार क्या हो गया

ग़ज़ल–

तलाशें क्या भला सूखी नदी में
बचा ही क्या है अपनी ज़िंदगी में

बता अब इल्तिज़ा किससे करें हम
कि साहिल भी तो डूबा तिश्नगी में

वो बोले तो बयां हो जाये सब कुछ
छुपा है राज़ उसकी ख़ामशी में

जो पूछा जिंदगी क्या चीज है ये
उड़ा दी बात उसने यूँ हंसी में

मुहब्बत का हुआ शैदाई जो भी
वो खोया है तेरी दीवानगी में

कहाँ ले जायेगी ये ज़िंदगानी
कि अब डर सा लगे है रोशनी में

जुदा रखता है वो अंदाज़ सबसे
नहीं ये बात यूसुफ़ हर किसी में

ग़ज़ल–

अब न सूरत ये दिखाई देगी
बस सदा मेरी सुनाई देगी

मैं चला जाऊँगा दर से तेरे
ज़ुल्फ़ जब मुझको रिहाई देगी

दो घड़ी का है मिलन अपना तो
रात होगी तो जुदाई देगी

पाँव ज़ख़्मी है सफ़र लम्बा है
अब वो मंज़िल क्या दिखाई देगी

इक समंदर है अकब में मेरे
क्या है जो अब ये खुदाई देगी

बंद कर लोगे दरिचे यूसुफ़
रोशनी फिर भी दिखाई देगी

ग़ज़ल-

मंज़िले तन्हा, रहगुज़र तनहा
चल पड़ा मुझमें इक सफ़र तनहा

वहशते-दिल ये दश्त और सहरा
मुझमें रहता है कोई घर तनहा

ज़िंदगी तेरा काफिला लेकर
कट ही जायेगा ये सफ़र तनहा

ग़म ज़माने के साथ लेता जा
यूँ भी जायेगा तू किधर तनहा

खो गया भीड़ में मेरा साया
लौट कर आ गया मैं घर तनहा

ख़्वाब आँखों ने जब से देखे हैं
अश्क जलते हैं रात भर तनहा

ग़ज़ल-

ख़ुद में ख़ुद को ही यूँ फ़ना करना
हिज्र की आग में जला करना

शहर में ढूंढ़ना वफ़ाओं को
जैसे पानी पे रास्ता करना

वास्ता फिर दिया है उल्फ़त का
अब तो मुश्किल है फैसला करना

ये गवारा नहीं है ग़ैरत को
तू जो बोले वही कहा करना

इस ज़मीं पर न पहुँचे साया भी
ख़ुद को इतना भी मत बड़ा करना

आईना थाम कर नहीं मुमकिन
एक पत्थर को देवता करना

ग़ज़ल–

मैं खड़ा हूँ जाने कब से बेसहारा धूप में
तुम चले आना अगरचे हो गवारा धूप में

अक्स ये किसका उभर आया है सूखी रेत पे
किसने हर सू मेरा ही चेहरा उभारा धूप में

जुल्फ़ का साया करो कि जल रही है आरजू
ख़्वाब लेके आ गया है ग़म का मारा धूप में

इक शजर मुद्दत से किसकी राह में यूँ है खड़ा
कौन इसको दे रहा है यूँ सहारा धूप में

यूँ ही तन्हा बादलों में या कभी उस झील में
किसको सूरज ढूंढ़ता है मारा मारा धूप में

आसमाँ की अपनी सारी सरहदों को लांघ के
आज फिर छत पे उतर आया सितारा धूप में

ग़ज़ल-

आज जाने कौनसा धोखा हुआ है
यूँ लगा की जिस्म को पहना हुआ है

चल पड़ा सूरज सफ़र पे फिर से अपने
क्यों मुसाफिर अब तलक ठहरा हुआ है

तुम उतर आओ ज़मीने-दिल पे मेरे
चाँद भी तो झील में उतरा हुआ है

कौन आया किसकी आहट गूँजती है
हर तरफ इक नूर सा फैला हुआ है

तेरी भी मुझसे कोई पहचान होगी
क्यों लगा चेहरा तेरा देखा हुआ है

क्या तलाशूं दिल के सहरा में यहाँ पर
इक समंदर खुद में ही उतरा हुआ है

फिर उभर आये हैं यूसुफ़ सूर्ख डोरे
ख़्वाब कोई रातभर जागा हुआ है

ग़ज़ल-

क्या बताऊँ मेरा क़ातिल कौन है
मेरी बरबादी में शामिल कौन है

अपने घर से मैं निकल के आ गया
अब बता मेरे मुक़ाबिल कौन है

दर्द मेरा ही सहारा है यहाँ
यूँ बिना तेरे भी हासिल कौन है

कौन यूँ मुझको पुकारे दूर से
डूबती वो मह्रे-मंज़िल कौन है

साथ यूँ तो काफ़िले के चल पड़ा
क्या कहूँ रहबर से मंज़िल कौन है

ग़ज़ल–

मैंने जब ख़ुद में उतर कर देखा
प्यास का जलता समंदर देखा

जब से तुमने यूँ नज़र भर देखा
फिर तो सबने मुझे छूकर देखा

अक्स यादों के नज़र आते हैं
आज आँसू को जलाकर देखा

सबने चेहरा मेरा ही देखा बस
झाँक के किसने यूँ अन्दर देखा

घट गया क़द यूँ मेरा मुझमें ही
उसको जब अपने बराबर देखा

मैं यूँ ग़ज़लों में उभर आया हूँ
ख़ुद में ख़ुद को जो मिटाकर देखा

ग़ज़ल–

वो ज़माने की नई रफ़्तार में गुम हो गया
छत से उतरा और फिर दीवार में गुम हो गया

अश्क मेरे नाम का निकला जो तेरी आँख से
ख़ुश्क मौसम के किसी आसार में गुम हो गया

इक अलग पहचान की यूँ आरज़ू की दौड़ में
वो ज़माने के किसी क़िरदार में गुम हो गया

पेट की जब आग ने उसकी अना भी फूँक दी
हाथ वो अपना छुड़ा बाज़ार में गुम हो गया

चंद सिक्कों की एवज दस्तार न बेची गई
वो क़लम को तोड़ के घर-बार में गुम हो गया

नाख़ुदा ने जब कहा कश्ती पे ज्यादा बोझ है
एक पागल तब किसी मझधार में गुम हो गया

ग़ज़ल-

हाले-दिल उनको सुनाया जाये
ज़ख़्म दिल का भी दिखाया जाये

सबके हाथों में भले पत्थर हो
आईना सच को दिखाया जाये

ये जो सूरज है अभी ऊँचा है
क़द ज़रा अपना बढ़ाया जाये

छाँव में भी तो बदन जलता है
धूप को ओढ़ूँ तो साया जाये

ज़िंदगी अपनी थकी है बिलकुल
अब कहीं ख़ेमा लगाया जाये

होने वाली है सहर अब यूसुफ़
अपनी आँखों को छुपाया जाये

ग़ज़ल–

हर तरफ इक ख़ामशी सी है तो है
यूँ सफ़र में बेबसी सी है तो है

साथ मेरे इक समंदर चल रहा
लब पे फिर भी तिश्नगी सी है तो है

सर पे तो दस्तार है दरबार में
घर में अपने मुफ़लिसी सी है तो है

सब मुझे तस्वीर कहते हैं तेरी
फिर भी मुझमें कुछ कमी सी है तो है

हर ख़ुशी के ख़त पे तेरा नाम है
मेरे हिस्से में ग़मी सी है तो है

बेवफ़ाई उनकी आदत बन गई
फिर भी हमको आशिकी सी है तो है

हम कलंदर आसमाँ को छत कहें
आँख में अपने नमी सी है तो है

हमको यूसुफ़ तीरगी से प्यार है
साथ फिर भी रोशनी सी है तो है

ग़ज़ल–

मौत का जिसको डर नहीं होता
बोझ सा उसके सर नहीं होता

मंज़िलों के निशाँ भी खो जाते
साथ जो हमसफ़र नहीं होता

सारे इल्ज़ाम मेरे सर होते
ग़र गिरेबां ये तर नहीं होता

छत से वीरानियाँ उतर आतीं
पास जो तेरे घर नहीं होता

ख़ून के आँसू हम नहीं रोते
आह में जो असर नहीं होता

मेरे दिल को ठिकाना कर लीजै
अब अकेले बसर नहीं होता

हाले-दिल वो भी जानता होगा
मुझसे जो बेख़बर नहीं होता

दिल की राहें उदास है यूसुफ़
जब से तेरा गुज़र नहीं होता

ग़ज़ल–

ढूंढ़ने से नहीं मिला अपना
कौन इस भीड़ में रहा अपना

जो मिले राह में सभी गुम थे
कौन देता हमें पता अपना

दिल जो टूटा तो टूट जाऊँगा
अब न तू हाथ यूँ छुड़ा अपना

लोग पत्थर संभाले बैठे है
मत बना मुझको आईना अपना

सच उसे दिल मेरा समझ बैठा
जो किसी ने मुझे कहा अपना

तुझको रूसवा ज़माना कर देगा
हमसफ़र मुझको मत बना अपना

तुमको खोकर ये हमने जाना है
इक ज़माना कभी रहा अपना

ग़ज़ल–

हमसफ़र है न तलबग़ार कोई
चल रहा फिर भी सोग़वार कोई

मैं टंगा हूँ यहाँ वहाँ देखो
बन गया हूँ मैं इश्तिहार कोई

दश्तो–सहरा भी कर दिये रोशन
कर दे तूफ़ाँ को ख़बरदार कोई

आज भी तेरा रस्ता तकता है
देख साहिल पे बेकरार कोई

रंज क्यूं कर ख़िज़ां के मौसम का
मुतंज़िर है मेरी बहार कोई

चल अँधेरों को पाट दें यूसुफ़
बाँधकर धूप की मैहार कोई

ग़ज़ल–

ये भूख मेरे घर में तमाशा नहीं करती
सो जाती है ख़ामोश सी चर्चा नहीं करती

ख़ुद्दारी मेरे साथ यूं चलती है हमेशा
ये मेरी अना का कभी सौदा नहीं करती

दुनिया कभी देती नहीं मंज़िल का पता तक
काँटे तो बिछा देती है रस्ता नहीं करती

ग़ुरबत को मिला करते हैं मिट्टी के खिलौने
हक़ में ये गरीबी मेरे अच्छा नहीं करती

सच्चाई हुई शहर की रातों में नुमाया
मजबूरी सड़क पर यहाँ क्या क्या नहीं करती

रोती है अकेले में वो नादानी पे मेरी
माँ मेरी कभी भूलकर गुस्सा नहीं करती

रहने लगा है यूसुफ़ जो मेरे घर में अँधेरा
ये धूप मेरी छत पे अब आया नहीं करती

ग़ज़ल–

रास्ते अपने बदल के आ गये
हम तुम्हारे दर पे चल के आ गये

जुगनूओं ने होड़ की थी आज फिर
रोशनी को मुँह पे मल के आ गये

इक नई तारीख़ लिखी जायेगी
हम घरों से गर निकल के आ गये

गाँव की मिट्टी बुलाती थी जिन्हें
शहर से वो सब निकल के आ गये

उस गली में याद का ख़ेमा जो है
हम ज़रा सा रूख़ बदल के आ गये

जिनसे यूसुफ़ हम किनारा कर चुके
फिर वही चेहरे बदल के आ गये

ग़ज़ल-

ज़िंदगी तू कमाल करती है
कैसे कैसे सवाल करती है

झूल जाती गरीबी फंदे पर
मौत ऐसा निकाल करती है

जानिबे-छत उतर के तन्हाई
आरजू-ए-विसाल करती है

क्या बताऊँ तुम्हारी फ़ुरकत भी
लम्हे लम्हे को साल करती है

जिस्म आ जाते हैं दुकानों पर
भूख जब भी निढ़ाल करती है

पहले भी कम न था मेरा चर्चा
ये ग़ज़ल भी कमाल करती है

ग़ज़ल–

जिस घड़ी टूट कर मैं बिखर जाऊँगा
ज़र्रे ज़र्रे में तुमको नज़र आऊँगा

अपने दिल की पनाहों में रह लेने दो
मैं मुसाफिर हूँ जाने किधर जाऊँगा

अपनी पलकों पे मुझको सजा लो यूं ही
आँख से जो गिरा तो बिखर जाऊँगा

एक सहरा से चल के यहाँ आ गया
तिश्नगी जो बढ़ी तो किधर जाऊँगा

इस नगर में मुझे कौन पहचानेगा
बाद मुद्दत के अपने जो घर जाऊँगा

ये क़लम हाथ में यूं ही रहने भी दो
छीन लोगे अगर तो मैं मर जाऊँगा

ग़ज़ल–

सहरा से अपने हिस्से की सब धूप छानकर
घर से निकल पड़ा हूँ मैं सूरज को तान कर

साहिल का उतरा चेहरा जो देखा नहीं गया
ख़ुद चाँद आ गया है नदी के ढ़लान पर

तारों ने मेरे पाँव से सीढ़ी निकाल ली
बुनियाद घर की रक्खी थी जब आसमान पर

हाथों में सबने अपने यूं पत्थर उठा लिये
यूसुफ़ से फिर ये सब ने कहा सच बयान कर

ग़ज़ल–

आँखों के दरपन से दुख के अक्स भले ही झाँकेंगे
हम जीवन की पुस्तक से अब सुख के पन्ने छाँटेंगे

मेरे शहर की गलियों में नफ़रत के कांटे उग आये
लेकर हाथ कुल्हाड़ी इसकी हर इक जड़ को काटेंगे

आँसू अब बोलेंगे धावा ऊँचे ऊँचे बँगलों पर
बंद तिजोरी में सपने हैं, घर घर जाकर बाँटेंगे

हम भी देखें अँधियारे कैसे निगलेंगे सूरज को
कब तक देखें काले दीमक देश को अपने चाटेंगे

छोड़ी है साहिल पे कश्ती पतवारों को तोड़ दिया
लेकिन अपने दम से हम अब इस दरिया को पाटेंगे

यहाँ वहाँ से इन रिश्तों की उधड़ चुकी है तुरपाई
थोड़ा थोड़ा वक़्त चुराकर यूसुफ़ इसको टाँकेंगे

ग़ज़ल–

हो जाये मुलाक़ात कहीं पर
कर लें दिल की बात कहीं पर

साथ चलो सपने देखें हम
मिल जाये जो रात कहीं पर

ख़ामोशी भी अच्छी है जब
बात बढ़े बे-बात कहीं पर

सारे ख़ंज़र खून के प्यासे
घायल आदम ज़ात कहीं पर

अय्यारों की बात करें क्यूं
रहबर साधे घात कहीं पर

क़ुफ़्ल पड़े हैं हक़ के मुंह पर
बातिल को सौग़ात कहीं पर

कहीं दफ़न होते सपने हैं
मरते है जज़्बात कहीं पर

चौराहे पर ज़िस्म खड़े है
बिकते हैं दिन रात कहीं पर

सुनने वाले बहरे यूसुफ़
कर ना अपनी बात कहीं पर

ग़ज़ल–

यूँ तेरा पता हमने पूछा भी नहीं है
तूने और मुझको बताया भी नहीं है

मैंने नदी से जोड़ लिये अपने मरासिम
कोई ग़म जो देता है शिक़वा भी नहीं है

जो बहारें गुज़री परिंदे भी उड़ गये
देख ले शज़र पर पत्ता भी नहीं है

अपने ग़म भी मेरे कासे में डाल दे
दर से गया सवाली आता भी नहीं है

सूखी हुई ज़मीं पे बादल उतर गया
ये और बात है कि बरसा भी नहीं है

यूसुफ़ हमारे जैसा उनको नहीं मिला
यूं भी शहर भर में हम जैसा नहीं है

ग़ज़ल–

रात के मेरे सहारे जागे
धूप ढलते ही सितारे जागे

बिखरा होंठों पे तबस्सुम ऐसे
जैसे शबनम पे शरारे जागे

उठ गई माँ तो चल पड़ा सूरज
अल सुबह सारे नज़ारे जागे

जब कमाने निकल गये बच्चे
तब कहीं जाके ईदारे जागे

रात सोती है रात भर यूं ही
ग़म के मारे है, बेचारे जागे

कैसी दस्तक है देखना यूसुफ़
ग़म सरे-शाम हमारे जागे

ग़ज़ल–

रात में लगता डर बाबा
जल्दी आना घर बाबा

तुम भी कोई सूरज हो
जलते हो दिनभर बाबा

खोया खोया रहता क्यूं
चाँद हुआ बेघर बाबा

क्यों दुनिया में आम हुए
दहशत के मंज़र बाबा

मौज़ बहा ले जाती है
रेत के मेरे घर बाबा

चिड़िया तो उड़ जायेगी
आ जाये जो पर बाबा

अपने हाथ उड़ा कर भी
रोते हैं दिन भर बाबा

ग़ज़ल-

हरेक मंजर मुझे बेजुबां की तरह लगता है
हर क़िरदार मेरी दास्तां की तरह लगता है

एक बूढ़ा-सा पीपल है कोई आँगन में
उसका साया मुझे माँ की तरह लगता है

वक़्त की धूप में आँचल वो अपना तान देती है
माँ का दामन मुझे आसमां की तरह लगता है

माँ! तेरी लोरी के बिना हर रात परीशां गुज़रे
तेरा हरेक लफ़्ज़ नाते-रवां की तरह लगता है

तेरी दुआओं की तासीर से ही मुझमें हिम्मत है
तुम्हारे बिन ये हौसला नातवां की तरह लगता है

लेकर आँसू की ज़ियाओं को सितारे छिटके
माँ का आँचल भी कहकशां की तरह लगता है

ग़ज़ल-

वक़्त के ही फेर में मैं उलझा हुआ हूँ
अपने आप में जो कहीं बिखरा हुआ हूँ

कोई शिकायत है न शिक़वा दिल को
क्या कहूं मैं अपने से ही रूठा हुआ हूँ

बांहों में समेटो या सीने से लगा लो
धूप बनके चारों तरफ बिखरा हुआ हूँ

दिल जलाये अपना अंधेरा तो मिटेगा
सूरज हूँ मगर शाम से ही डूबा हुआ हूँ

ग़ज़ल-

घर की दरो-दीवार में बिखरा हुआ हूँ
मैं कई क़िरदार में बिखरा हुआ हूँ

ख़ुशियॉ तो ख़ैरात में मिलती नहीं है
इसलिये बाज़ार में बिखरा हुआ हूँ

फ़ूल चुनने वाले चुन कर ले गये
मैं यहां पे ख़ार में बिखरा हुआ हूँ

कल जहां सारा दिखा था बेख़बर
आज के अख़बार में बिखरा हुआ हूँ

मुझको तलाशो तुम न घर को छोड़ के
ग़ज़लों के शहकार में बिखरा हुआ हूँ

वो समेटे आकर तो ख़ुद को समेटूं
मैं किसी के प्यार में बिखरा हुआ हूँ

ग़ज़ल-

साथ मेरे यूं तो रहबर भी बहुत थे
रास्ते में बिखरे पत्थर भी बहुत थे

लोगों की भीड़ ने उसे मुंसिफ़ बना दिया
इल्ज़ाम यूं तो उसके सर भी बहुत थे

बेशक़ मेरी ताईद में तुम भी खड़े थे
मेरी तलाश में कई पत्थर भी बहुत थे

सच के कच्चे रास्ते छोड़े नहीं गये
मेरे ख़िलाफ़ यूं तो उठे सर भी बहुत थे

हौसले परवाज़ के मेरे न कम हुए
रास्ते में बिखरे हुए पर भी बहुत थे

मेरी निग़ाह दर वो तेरा ढूंढ़ती रही
तेरे घर से पहले यूं घर भी बहुत थे

माँ तेरे आँचल का वो साया बना रहा
दुनिया में कई यूसुफ़ बेघर भी बहुत थे

ग़ज़ल-

मेरे ज़ेहन-ख़्याल के पैक़र से निकल जा
ऐ हसरते-नाकाम मेरे घर से निकल जा

चलने लगी है सुबह किसी की तलाश में
मायूसियों को छोड़ के बिस्तर से निकल जा

माँ की दुआएँ साथ ले तूफ़ाँ के सफ़र में
थाम कर पतवार समंदर से निकल जा

ज़ीनत बढ़ा किसी की तू आबो-ताब से
या समाज के हर इक ज़ेवर से निकल जा

ग़ज़ल-

सूरज जब भी खोल कर सीना निकलता है
पहाड़ की चोटी पे भी ज़ीना निकलता है

ईक़ाद की रोशनी पड़ती है जहां पर
वहां पत्थरों से पसीना निकलता है

सदफ़ के पहलू में शबनम की बूँदें हैं
खोलिये उसको तो नगीना निकलता है

वो हुनर हमको भी सिखा दे या रब!
तूफ़ाँ से किस तरह से सफ़ीना निकलता है

अदब से चूमिये फिर देखिये यूसुफ़
माँ के नक़्शे-पा से दफ़ीना निकलता है

ग़ज़ल-

गाँव की सरहद से हम आगे निकल आये
सूरज के भी तो पाँव में छाले निकल आये

तीरगी की गाँठ बाँधे रात भर चलते रहे
सुबह तलक रोशनी के धागे निकल आये

वक़्त की चादर समेटे बढ़ रहा था कारवां
और मंज़िल से क़दम आगे निकल आये

लब्बे-कुन की वो सदा कानों में जैसे ही पड़ी
अपना बिस्तर छोड़ कर तारे निकल आये

इक दुआ दिल से जो निकली आह-सी
सहरा की मिट्टी से भी दाने निकल आये

मिलती रही जिसकी बशारत ग़ैब से
माँ के क़दमों से वो दरवाज़े निकल आये

शायरी में ज़िक्रे-रब्बी आपके भी आ गया
औराक़ पर जैसे कई दाने निकल आये

ग़ज़ल–

वक्त की अजब मार है भैया
रोटी की दरकार है भैया

अच्छे दिन वो बेच गया है
झूठ का कारोबार है भैया

फिर गरीब की किस्मत फूटी
ओलों की जो मार है भैया

चाहे कोई फांसी लटके
सोई हुई सरकार है भैया

उल्टी सीधी ख़बरों से ही
अटे पड़े अख़बार हैं भैय्या

हम मज़हब के नाम बंटे हैं
हम पर भी धिक्कार है भैया

ग़ज़ल-

मेरी पलकों के पैकर में कोई रोता रहता है
मेरे अन्दर जाने क्या क्या बिखरा बिखरा रहता है

तेरी दुनिया से मेरा जी उचटा उचटा रहता है
भीड़ में चल कर अक्सर कोई तन्हा तन्हा रहता है

उफ़क़ धूप में दर दर फिरता देखो सुबहो-शाम यहां
ये सूरज भी पगला जाने क्या क्या करता रहता है

चट्टानों की परवाह कैसी, अपना रस्ता आप करें
मेरे दिल के अन्दर भी तो आब सा बहता रहता है

तेरी फ़ितरत भी तो यूसुफ़ एक शराबी जैसी है
आँखों से पीकर तू पगला बहका बहका रहता है

ग़ज़ल–

वो नसीमे-निक़हत जब उनका पता देगी
ख़ामोश समंदर में तूफां सा उठा देगी

साहिल से, समंदर से ज़रा दूर ही रहना तुम
कोई मौज़ मुहब्बत में सीने से लगा लेगी

न तुमको ख़बर होगी न उनको ख़बर होगी
वो डूब के तुम में ही तुम्हें अपना बना लेगी

कश्ती के मुसाफिर क्या पतवार संभालेगे
वो नज़रे कुन है मांझी! तूफान उठा देगी

वो तुमको छुपा लेगी वो दिल में बसा लेगी
मत सोचना यूसुफ कि साहिल पे लगा देगी

ग़ज़ल-

नज़र में आसमान रखता हूँ
इसलिये ऊंची उड़ान रखता हूँ

सांपों ने जब से शहर छोड़ा है
फ़ासले दरमियान रखता हूँ

आईना देखना मंजूर नहीं
दोस्त सब बेज़ुबान रखता हूँ

मैं अकेला हूं यही सच है
पीछे पूरा ख़ानदान रखता हूँ

बुरी बात बुरी क्यों न लगे
मैं भी दिलो-जान रखता हूँ

गर्दिशे-अय्याम सर पटकते हैं
मां को जो निगहबान रखता हूँ

ग़ज़ल-

बस गवाही का सबब पूछेंगे
वो मेरे क़त्ल का कब पूछेंगे

तड़पती रहे इंसानियत चाहे
लोग पहले मज़हब पूछेंगे

सड़क पर दम तोड़े तो सही
भले इंसान हैं तब पूछेंगे

जीते जी पुरसाने-हाल कौन?
मर जायेंगे तो सब पूछेंगे

मैं हक़ीक़त बयान कर दूंगा
महशर में जो रब पूछेंगे

सारा महल्ला सर पे हाथ फेरेगा
चार दिन बच्चों को सब पूछेंगे

ग़ज़ल–

जीने का वो हर मुमकीन बहाना छीन लेते हैं
वो कश्ती छीन लेते हैं, किनारा छीन लेते हैं

समझेंगे कभी न वो पढ़ाई तेरे मक़तब की
यहां उस्ताद बच्चों से रिसाला छीन लेते हैं

सियासत का कभी मंज़र न बदला है न बदलेगा
दिखाकर ख़्वाब रोटी का निवाला छीन लेते हैं

क़फ़स में डालकर सारी वो गिरह खोल देते हैं
मगर हाथों से चाबी और ताला छीन लेते हैं

कोई न सवाली हो अगर मस्जिद भी खाली हो
फिर अल्लाह ने 'मत का ख़ज़ाना छीन लेते हैं

परिंदे क्यूं भला यूसुफ़ तुम्हारी छत पे उतरेगें
वहां सय्याद जब उनका भी दाना छीन लेते हैं

ग़ज़ल–

यूँ जो मुश्किल हमसफ़र नहीं होती
इतनी आसां रहगुज़र नहीं होती

वही जम्हूरियत की बात करते हैं
सियासत की जिन्हें ख़बर नहीं होती

बेकशी का तमाशा न करता मैं
ये नामुराद आँखें अगर नहीं होती

गर कुछ पूँजी संभाल रख लेती
ये बुढ़िया दर-ब-दर नहीं होती

बैर है ज़िंदगी को हमसे और
मौत भी तो मयस्सर नहीं होती

ग़ज़ल–

थोड़े ग़म है कुछ खुशी है और क्या
ज़िंदगी तो ज़िंदगी है और क्या

प्यार तो दोनों तरफ है एक सा
दरमियां कुछ ख़ामशी है और क्या

अब्र आंखों में लिए हम आ गए
लब पे अब भी तिश्नगी है और क्या

मरते दम तक ये गली न छोड़ेंगे
यां तेरी खुशबू बसी है और क्या

ये मेरी ग़ज़लें नहीं जज़्बात हैं
ये ही मेरी आशिक़ी है और क्या

ग़ज़ल-

फ़ैसला कल पे न टाला जायेगा
आज कोई हल निकाला जायेगा

उम्मीद की शम्मा जला दी आपने
दूर तक इसका उजाला जायेगा

दर्द मेरा आंसुओं में ढल गया
अब संभाले न संभाला जायेगा

यूं खुदी से प्यार न इतना करो
ये खिलौना तोड़ डाला जायेगा

उम्र सारी मालो-दौलत जोड़ ले
हाथ ख़ाली तू निकाला जायेगा

मैं बयां जिसको कभी न कर सका
दर्द वो ग़ज़लों में ढाला जायेगा

ग़ज़ल–

जो मिला उसको ग़नीमत समझा
मैंने ईमान को ही दौलत समझा

मैंने ख़्वाहिश को कभी पर न दिये
जो मिला रब से, इनायत समझा

वो महज़ तेरी शनासाई थी
जिसे पागल ने मुहब्बत समझा

मेरी फ़ितरत ही शहंशाही है
आपने जिसको फ़लाकत समझा

वो फ़क़त ख़्वाब था जो टूट गया
जिसको ताउम्र हकीकत समझा

ग़ज़ल–

ख़त्म सारा सिलसिला हो जायेगा
जो बना है वो फ़ना हो जायेगा

तिश्नगी मांगी है मैंने आपसे
सहरा सहरा आशना हो जायेगा

तेरी यादों को संभाला इसलिये
ये ना होंगी तो ख़ला हो जायेगा

आपकी गर नेक ख़्वाहिश साथ हो
फिर यक़ीनन रास्ता हो जायेगा

माँ के क़दमों को अगर मैं चूम लूं
मेरा हज घर में अदा हो जायेगा

संग को यूँ मत तराशो ऐ युसूफ!
एक दिन ये भी ख़ुदा हो जायेगा

ग़ज़ल-

आईने सा टूट के बिखर जाने के लिये हूँ
इक खिलौना दिल को बहलाने के लिये हूँ

मुझको हक़ीक़त में क्यूं तलाश करते हो
मैं फ़कत ख़्वाब हूँ टूट जाने के लिये हूँ

तुम भी रखते हो तो हसरत निकाल लो
मैं बशर यहाँ पे आजमाने के लिये हूँ

तुम संभाले रखना ये माले-गनीमत
मैं तो फ़क़ीर ठोकरें खाने के लिये हूँ

ईनाम की परवाह करे जिसको शौक है
मैं तो यहां पे सुनने सुनाने के लिये हूँ

मैं अब भी सफ़र में हूँ क्या जानते नहीं
इक ठिकाना दिल में बनाने के लिये हूँ

ग़ज़ल–

आ अज़ल तुझको संवार देता हूँ
आज तूफान में कश्ती उतार देता हूँ

तुम समंदर से मेरा चर्चा करना
मैं उसे आंख का पानी उधार देता हूँ

मैं कभी डाल कर दाना परिंदों को
इंसानियत का कर्ज़ा उतार देता हूँ

चल किसी मजलूम के आंसू पोंछे
चल आज तेरा ईमां संवार देता हूँ

वो झूठ को सच्चाई से बयां करता है
क्यों न उसे सियायत में उतार देता हूँ

मेरी अना जो अपना सर उठाती है
मैं शोहरत का चोला उतार देता हूँ

ग़ज़ल-

यां ख़बर में एक ही तो मुद्दआ है
इश्क़ के बीमार को ये क्या हुआ है

अब भी आती है बदन से एक खुशबू
हौले से आकर मुझे किसने छुआ है

ऐ ग़मों जाओ यहां ना और ठहरो
दिल किसी की याद में यूं आशना है

आज फिर ख़बरों का बाईस बन गया हूँ
हर जगह पे फिर वही चर्चा बना है

हाँ यक़ीनन खुशनसीबी साथ है
जिनके सर पे माँ तेरा साया बना है

इनको सीने से लगाकर जी रहा हूँ
तेरी यादों का मुझे जो आसरा है

ग़ज़ल–

सूर्य की नियति में है खग्रास लिखा
मैंने फिर भी जीवन का उजास लिखा

बिना लड़े ही पराजय क्यूं स्वीकार करूं
मैंने तो बस जीत का ही विश्वास लिखा

छंदों–बन्धों की सीमायें स्वीकार नहीं
केवल समय के पन्नों पे अहसास लिखा

मैं भी आंसू, पतझड़, सावन लिख देता
किंतु मैंने जीवन का वनवास लिखा

कान्हा ने जब राधा के संग रास रचाया
प्रेम दीवानी मीरा का आभास लिखा

ग़ज़ल–

ज़िंदगी में कैसे कैसे मोड़ आये
मील का पत्थर भी पीछे छोड़ आये

बरसों हम भी याद आयेंगे उन्हें
हम तअल्लुक ऐसे अपने छोड़ आये

पैरों में ना अब कोई जंज़ीर है
हम क़फ़स की तिलियों को तोड़ आये

बोरियां बिस्तर उठा के चल दिये
और पीछे यादें अपनी छोड़ आये

क़ीमती चीज़ें समेटी चल दिये हैं
बूढ़ी माँ को घर पुराने छोड़ आये

ग़ज़ल–

दिल ने जो भी सहा नहीं कहते
हम बुरे को बुरा नहीं कहते

अपना सर एक को झुकाते हैं
हर किसी को खुदा नहीं कहते

''उम्र लम्बी हो'' ये क्या कहते हो
सिर्फ इसको दुआ नहीं कहते

आज उसको कोई शिकायत है
मैंने माँ को सुना नहीं कहते

बस इशारों से बोल दो मुझको
उसने फिर भी कहा ''नहीं कहते''

हम वो शायर हैं दिल की कहते हैं
हम किसी और का नहीं कहते

ग़ज़ल-

लज़्ज़त-ए-इश्क़ छुपाऊं कैसे
चुप रहूं और बताऊं कैसे

अपने वादे को निभाऊं कैसे
ये गली छोड़ के जाऊं कैसे

ख़्वाब दरिया में फिर से डूब गया
ख़ुद से अब आंख मिलाऊं कैसे

तोड़ के दिल को चला आया था
अब उसी दर पे मैं जाऊं कैसे

शख़्स वो मेरे मुआफ़िक तो नहीं
हाथ भी उससे मिलाऊं कैसे

ग़र्द है रूह पे गुनाहों की
सजदे में सर को झुकाऊं कैसे

रूठता है ये मुझसे बच्चों सा
मैं नसीब अपना मनाऊं कैसे

ग़ज़ल–

अभी अभी सूरज की कंदील बुझा कर
आया छत पे चांद का बिस्तर लगा कर

रात भर ये आंखें मेरी जागती हैं
भाग जाता है कोई कुंडी बजा कर

घर उसे जो ढूंढना मुश्किल न हो
आंखें दो रख दी है देहरी पे जला कर

हैसियत कुछ हम भी तो रखते हैं अपनी
हम शराफ़त बेचेंगे मज़मा लगा कर

दर्द अपना हमने चाहा जब बताना
चल दिया वो दास्तां अपनी सुना कर

ग़ज़ल-

जीने के कुछ मानी रख
ज़ात तेरी लाफ़ानी रख

इन्सां खुद को कहता है
आंखों में कुछ पानी रख

गर मेरा हमसाया है तू
मेरी कोई निशानी रख

रब से अगर मुहब्बत है
छत पे दाना-पानी रख

मैं तुझसे नाराज़ नहीं हूँ
बीती बात पुरानी रख

तेरी ग़ज़लें अच्छी हैं पर
यूसुफ़ जैसा सानी रख

ग़ज़ल–

जो कभी अपनों से धोखा खा गया
उसको जीने का सलीक़ा आ गया

मैं हवा के साथ बढ़ता ही रहा
रास्ते में एक पत्थर आ गया

दाढ़ी रख के मैं मुसलमां हो गया
देख मुझमें भी दिखावा आ गया

धूप में उनकी मशक्कत देखकर
आज सूरज को पसीना आ गया

आसरा उसको दिया था पेड़ ने
आज दीमक पेड़ को ही खा गया

तल्ख़ियां जो ज़िंदगी ने दीं मुझे
रंग उसका शायरी में आ गया

ग़ज़ल–

ज़ुल्मत का दौर अब तो मिटाने के लिये आ
या शम्मा हसरतों की बुझाने के लिये आ

आ जाऊं मैं चौखट पे तेरी सर को झुकाने
तू भी कभी तो मुझको मनाने के लिये आ

शब में कहीं तलाश रहा मंज़िलों को मैं
तू फिर से कोई राह दिखाने के लिये आ

अपनी हयात में ही कहीं खो गया हूं मैं
आख़िर मैं कौन हूँ ये बताने के लिये आ

कुछ आरज़ू के पंछी क़फ़स तोड़ चुके हैं
इनको भी तू परवाज़ सिखाने के लिये आ

या तो मुझे बता दे जहां पर नहीं है तू
या खुद ही जाम कोई पिलाने के लिये आ

तेरी गली को छोड़े बरस बीत गये हैं
अब तू ख़्याल में ही सताने के लिये आ

ग़ज़ल-

अजब-ग़ज़ब है रिश्तों का ये ताना बाना बस्ती में
कोई चाचा कोई मामा कोई नाना बस्ती में

मेरी बस्ती में भी गंगा ज़मना बहती रहती है
वक़्त मिले तो तुम भी आना-जाना बस्ती में

बड़े शहर की तरह यहाँ पर भीड़ नहीं रहती लेकिन
रहता है हर चेहरा जाना-पहचाना बस्ती में

रूखा सूखा जो मिलता है बांट के खा लेते हैं सब
हमनें सीखा है रिश्तों को यहाँ निभाना बस्ती में

अब भी मां आवाज़ लगाने दरवाजे तक आती है
अब भी यहाँ पर दिखता है वो दौर पुराना बस्ती में

ग़ज़ल

अपनी यादों का सिलसिला ले जा
मेरी आँखों से रतजगा ले जा

जल रहा हूँ मैं अपने साये से
धूप को तू कहीं उठा ले जा

यूँ न काफ़िर कहीं मैं हो जाऊँ
दूर अपना ये फ़लसफ़ा ले जा

ये किसी भी तरफ नहीं जाता
दश्त से ये भी रास्ता ले जा

अपने में या तो डुबो ले मुझको
साथ अपने ही या बहा ले जा

टूटकर गिर चुका हूँ शाखों से
तू हवा है तो फिर उड़ा ले जा

ग़ज़ल

देख कर मैं कितना रोया झील में
चाँद को किसने डुबोया झील में

जगमगाते हैं सितारे इस तरह
आसमां हो जैसे खोया झील में

मार कर पत्थर न कोई तोड़िये
अक्स जो मैंने सँजोया झील में

जाने किसको ढूंढता रहता है वो
ख़्वाब उसने जबसे बोया झील में

बिखरे हैं मोती हज़ारों रेत पर
चुपके चुपके कौन रोया झील में

आसमां भी फूट कर रोने लगा
मैंने जब दामन भिगोया झील में

ग़ज़ल

यूँ सारी मुश्किलों को आसान कर लिया
ग़म को अपने घर में मेहमान कर लिया

रोते हुए को हमने हँसाया है आज फिर
थोड़ा सा और हश्र का सामान कर लिया

आँधी का अब न डर है जलते चराग़ को
उसने जो आँधियों को निगहबान कर लिया

रिश्तों के शजर काट के दीवार उठा ली
हमने भी अपने घर में दालान कर लिया

फिर भाई ने भाई पे तलवार उठा ली
और घर को जंग का मैदान कर लिया

तारों को तोड़ डालो सूरज को बुझा दो
हमने जला के ख़ुद को लोबान कर लिया

ग़ज़ल

हादसे-दर-हादसे होते रहे
बोझ तेरा ज़िंदगी ढोते रहे

मील के पत्थर तो हमने पा लिये
मंज़िलों के हर निशां खोते रहे

आरज़ू में जाने किसकी रातभर
ख़्वाब मेरे फूट कर रोते रहे

हम वफ़ा करके यूं ही बदनाम बस
बेवफ़ा के नाम से होते रहे

रहबरी हाथों में जिनके थी कभी
राह में काँटें वही बोते रहे

वक़्त बदलेगा किसी ने कह दिया
और यूसुफ़ उम्र भर सोते रहे

ग़ज़ल

पहरा साँस पर अपनी बिठाकर तुम चले आना
जहाँ जाकर मैं ठहरूंगा वहाँ पर तुम चले आना

वहाँ की सख़्त मिट्टी है वो पानी क्या संभालेगी
उठे सैलाब जब कोई समंदर तुम चले आना

बढ़े जब तीरगी शब की क़दम भी डगमगा जाये
कोई आँसू निग़ाहों में जला कर तुम चले आना

मेरी बातों को जाने-जां कभी भी दिल पे मत लेना
ख़ता जो हो गई मुझसे भुला कर तुम चले आना

ये दिल मासूम बच्चा है रोता है, बिलखता है
मिट्टी का खिलौना ही उठाकर तुम चले आना

उसे मेरी वफ़ाओं का यक़ीं आ जायेगा क़ासिद
अकेले में उसे ग़ज़लें सुनाकर तुम चले आना

वो रिज़वां क्यों तुम्हें यूसुफ़ जन्नत में बुलायेगा
दुआ कुछ साथ माँ की भी ले कर तुम चले आना

ग़ज़ल

दिल में यूं परवाज़ की कुछ ख़्वाहिशें बाक़ी रहीं
कुछ हौंसला बाक़ी रहा, कुछ कोशिशें बाक़ी रहीं

कुछ किनारे हो गईं कुछ साथ मेरे चल पड़ी
कुछ हवा बनके उड़ीं, कुछ ख़्वाहिशें बाक़ी रही

मैं बहुत टूटा मगर उम्मीद अब भी साथ थी
दिल के कोने में कहीं कुछ आतिशें बाक़ी रहीं

मैं ज़माने की मुहब्बत को ना समझा भूल थी
वो साज़िशों का हिस्सा थी जो साज़िशें बाक़ी रहीं

वो समेटे साथ अपने सब बहारें ले गया
सहरा-ए-दिल में मगर कुछ बारिशें बाक़ी रहीं

प्यार यूं तो दरमियां था कुछ तक़ल्लुफ़ साथ थे
कुछ फ़ासले बाक़ी रहे कुछ बंदिशें बाक़ी रहीं

मुझसे जब भी वो मिला तो खूब हंस हंस के मिला
दिल में उसके जाने क्या था रंज़िशें बाक़ी रहीं

मेरी हर तौबा पे मुझको माफ़ वो करता रहा
नैमतें मिलती रहीं और लग्ज़िशें बाक़ी रहीं